

पंच-परमेष्ठी पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

अरहन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन ।
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन ॥
मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन ।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन ॥
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन ।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन् ! अत्र
अवतर-अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन् ! अत्र
तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिन् ! अत्र
मम सन्निहितो भव-भव वषट् ।

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ ॥
मैं जन्म-जरा-मृतु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
संसार-ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं ।
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाये हैं ॥
शीतल चंदन है भेंट तुम्हें, संसार-ताप नाशो स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।
दुःखमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही ।
शुभ-अशुभ भाव की भँवरों में चैतन्य शक्ति निज अटक रही ॥
तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

मैं काम-व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया ।
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुम को पाकर मन हर्षाया ॥
मैं काम-भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
मैं क्षुधा-रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ ॥
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा-रोग मेटो स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्ता माना ।
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना ॥
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल ।
संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल ॥
यह धूप चढ़ाकर अब आठों कर्मों का हनन करूँ स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का ।
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का ॥
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ ।
अबतक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(पद्धति)

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार ।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अरहन्त देव को नमस्कार ॥१॥
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार ।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंठ, भगवंत सिद्ध को नमस्कार ॥२॥
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार ।
हे मुक्तिवधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार ॥३॥
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार ।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार ॥४॥
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार ।
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार ॥५॥
बहु पुण्यसंयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरण दर्शन ।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन ॥६॥
निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ ।
अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ ॥७॥
निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ ।
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ ॥८॥
जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा ।
तब चार घातिया क्षय करके, अरहन्त महापद पाऊँगा ॥९॥
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु! कब इसको पाऊँगा ।
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव में आऊँगा ॥१०॥
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु! मैंने की है पूजन ।
तबतक चरणों में ध्यान रहे, जबतक न प्राप्त हो मुक्ति सदन ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्यो
अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ ।
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ ॥१२॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)